समाज में स्त्रियों का स्थान

डॉ० देवेन्द्र भूषण

Ph.D., NET (इतिहास)
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया।

प्राचीन भारतीय धर्मग्रन्थों में विवाहादि संस्कारों के वृत्तान्तों को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत में स्त्रियों का बहुत सम्मान था। विशेषकर स्मृतियों में तो स्त्रियों को बहुत ही आदर से देखा गया है। स्मृतियाँ इस तथ्य को समझती हैं कि स्त्री और पुरूष एक दूसरे को पूर्ण बनाने में सहायक हैं। पुरूष के बिना स्त्री और स्त्री के बिना पुरूष अधूरा है। इसलिये स्त्री पुरूष की अर्द्धांगिनी कही गयी है। सभी स्मृतियों में पति और पत्नी की उपमा बीज और क्षेत्र से दी गयी है अर्थात् पुरूष बीज है तो पत्नी क्षेत्र है। यह उपमा स्त्रियों की वास्तविक सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालती है। बीज को क्षेत्र न मिले तो वह निरर्थक है तथा क्षेत्र बीज के अभाव में निरर्थक है। कैसा ही बीज क्यों न हो जब तक उसे क्षेत्र न मिले वह अपने अंदर निहित महती शक्ति को वृक्ष के रूप में प्रतिफलित करने में असमर्थ रहता है। इसी तरह स्त्री और पुरूष एक दूसरे पर आश्रित हैं। इस अन्योन्याश्रय सम्बन्ध से यह प्रश्न ही नहीं उठता कि कौन किससे बढ़कर हैं दोनों का महत्व एक दूसरे के बिना असम्भव है। इसीलिये स्मृतियों में स्त्रियों की स्थिति की विवेचना की गयी है। स्मृतियाँ जहाँ पुरूष को गृहस्वामी बनाती हैं वही स्त्री को गृहस्वामिनी के पद पर प्रतिष्ठापित करती हैं। मनुस्मृति आदि के अध्ययन से यह पता चलता है कि ये स्मृतियाँ दोनों में शारीरिक शक्ति क्षमता तथा मनोवैज्ञानिक स्तर में पर्याप्त असमानता मानती हैं। आयंगर महोदय ने इस तथ्य को स्वीकार किया है। आयंगर महोदय के कथानुसार स्त्री और पुरूष में शारीरिक शक्ति क्षमता और मनोवैज्ञानिक स्तर का यह जो अंतर है वह केवल नियमों के द्वारा ही पूरा हो सकता है। तभी ये दोनों एक दूसरे के पूरक हो सकते हैं। वैसे भी इस दोनों में पारस्परिक आकर्षण की क्षमता तो रहती ही हैं परन्तु वह आकर्षण मात्र कामाचार पूर्ण होने तक रहता है इसमें कामाचार की बहुलता होती है परन्तु नियमों और विधानों के अभाव में वह सम्बन्ध दोनों पूर्णता परक न होकर इच्छा की पूर्ति मात्र होगा। ऐसा होने पर सामाजिक अव्यवस्था होगी। इसी दृष्टिकोण से धर्मशास्त्रों में दोनों के इन्द्रिय निग्रह पर बल दिया गया है। इसका अर्थ नहीं कि धर्मशास्त्र काम को हीन दृष्टि से देखते हैं। स्मृतियाँ काम को मात्र एक कर्तव्य के रूप में देखती थी न कि ऐन्द्रियता की दृष्टि से। अतः इस काम को मात्र इन्द्रिय सुख में परिवर्तित होने के लिये अंकुश लगाया गया जिसका उदाहरण विवाह से पूर्व पुरूष का ब्रह्मचर्याश्रम के व्रतोपदेश तथा अनन्य पूर्विका से जिसे किसी प्रकार का दाम्पत्य जीवन का अनुभव न प्राप्त हुआ हो विवाह करने के विधान में प्राप्त होता है परन्तु कहीं कहीं ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनके आधार पर आलोचक स्मृतियों में स्त्रियों को हीन दृष्टि से देखने का आरोप लगाते हैं वे हैं पुरूष की चलचित्तता और नारी का अप्रतिम आकर्षण। स्वाभाविक है कि स्त्रियों का सौन्दर्य है पुरूष को बलात् आकर्षित हुये है। इसीलिये मनु ने स्त्री स्वभाव को देखकर उनसे बचने के लिये पुरूष को सावधान किया है। इसका यह अर्थ तो नहीं कि वे स्त्रियों को हीन दृष्टि से देखत हों।

स्त्रियों की स्वतंत्रता के विषय में भी कुछ भ्रानितयाँ हैं। स्त्रीस्व भाव को देखते हुये ही मनु ने उन्हें स्वतंत्र रहने से रोका है। वे स्पष्ट कहते हैं कि स्त्री अपने समस्त जीवन स्वतंत्र नहीं है। स्त्री की रक्षा कुमारावस्था में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र करता है।[1] इसी तथ्य को यथा तथा याज्ञवल्क्य ने भी वैकार किया है।[2] अतः स्त्री स्वतंत्रता की कभी आकांक्षा न करे। इससे स्पष्ट है कि स्मृतियों ने स्त्री को स्वातंत्र्य नहीं प्रदान किया। परन्तु इससे उससे अधिकार तो हनन नहीं होता वह पुरूष के गृहिणी पद पर तो निश्चित रूप से आसीन होती है। यह उपर्युक्त श्लोक तो उसकी रक्षा सेवा सुश्रूषा परक है तथा स्त्री के कातर स्वभाव को देखते हुए भी ऐसा कहा गया है। स्मृतियों के सामने स्त्रियों के समानाधिकार वाला आधुनिक चित्र निीं था उनके सामने स्त्रियों के समानाध्किार वाला आधुनिक चित्र नहीं था उनके सामने स्त्रियों के समानाधिकार वाला आधुनिक चित्र नहीं था उनके सामने स्त्रियाँ का गृहिणी वाला चित्र था। घर की सम्पूर्ण व्यवस्था ठीक रखना उनका काम तथा पुरूषों का उस व्यवस्था को ठीक रखने के लिये धनोपार्जन करना था। उस समय स्त्रियों न तो धनोपार्जन ही करती थीं और न ही आज की तरह स्वतंत्र थी। स्त्रियों को मनुस्मृति अपना जो प्रयोग किया है उसका यह कार्य नहीं कि उसे आर्थिक क्षेत्र में कोई अधिकार इसका अर्थ तो

यही है कि उसे धानार्जन का अधिकार नहीं था परन्तु धन संरक्षण का तो पूर्ण अधिकार है। अगर सोचा जाय तो धन कमाना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि व्यय करना। व्यय कहाँ कैसे और कब किया जाय इसके औचित्यानौचित्य का पूर्ण अधिकार स्त्रियों को ही है। इसलिये याज्ञवलकय ने विवाहयोगय कन्या के लिये उसका मितव्ययी होना बताया है।[3] इससे यह स्पष्ट होता है कि घर में व्यय करने का पूरा अधिकार स्त्री को ही था। मनु ने तो स्पष्ट रूप से कहा है कि पुरूष स्त्रियों को धन के संग्रह करने का व्यय करने के लिये नियोजित करे।[4]

वैधानिक अधिकारों में भी स्मृतकारों ने स्त्रियों के साथ निश्पक्षता का ही व्यवहार किया है। मनु तथा याज्ञवल्क्य दाय भाग के नियमों को बतलाते समय सर्वप्रथम यह कहते हैं कि पुत्र माता–पिता की मृत्यु हो जाने पर आपस में दायविभाग करे क्योंकि उनकी जीवितावस्था में वे उनकी सम्पत्ति नहीं ले सकते।[5] अर्थात विधवा माता के जीवित रहते हुए पुत्र सम्पत्ति में बंटवारा नहीं कर सकते। स्त्री का स्त्री धन पर पूर्ण अधिकार होता है।[6] इन उदाहरणों के आधार पर यही कहा जा सकता है कि स्मृतियों ने निष्पक्ष होकर स्त्रियों को अधिकार प्रदान किया है।

किसी भी समाज की नींव उस समाज में प्राप्त स्त्रियों के सम्मान के ऊपर ही आधारित है। इस दुष्टि से स्मृतियाँ स्त्रियों को बहुत अधिक सम्मान प्रदान कर भारतीय संस्कृति की समृद्धि का परिचय देती हैं। कौन किससे अधिक गौरवशाली है। इसको बतलाते हुए मनु कहते हैं कि 10 उपाध्यायों की अपेक्षा आचार्य 100 आचार्यो की अपेक्षा पिता तथा 1000 पिताओं की अपेक्षा माता अधिक गौरवशालिनी है।7

इस प्रकार मनु ने स्त्रियों को इतने अधिकार प्रदान किये हैं। याज्ञवल्क्य भी उन्हें कम आदर से नहीं देखते हैं। वे नारी जाति को अत्यन्त पवित्र मानते हैं उनका तो स्पष्ट कहना है कि साम देवता ने नारी को पवित्रता दी। गान्धर्व ने मधुर वाणी दी अग्नि ने सब प्रकार से पवित्र होने की शक्ति दी अतएव स्त्रियाँ पवित्र होती हैं।8 इस सम्मान क्रम में याज्ञवल्क्य ने स्त्रियों के परित्याग के विषय में कहा है कि सुरापान करने वाली दीर्घ रोग ग्रस्त, धूर्त, बांझ, धन का नाश करने वाली, कटुषाषिणी पुत्रियों को जन्म देने वाली और पति का अहित चाहने वाली स्त्री को छोड़ा तो जा सकता है परन्तु उक्त दोषों वाली प्रथम विसाहिता पत्नी का पालन पोषण अवश्य करना चाहिये।[9] इस प्रकार याज्ञवल्क्य नारी को सम्मान देने में पीछे नहीं रहे। समस्त माननीय अधिकार प्रदान करने पर भी जब यह समझा गया कि अब भी उसके सम्मान में कुछ त्रुटि रह गयी है तब उसे मातृदेव कहकर सम्बोधित किया गया। इसी प्रकार उसके भार्या और गृहिणी स्वरूप को इस स्थिति में रखा गया है कि सभी देवताओं को प्रसन्नता का अधिकार स्त्रियों पूजनीयता ही हो जाती हैं। इसीलिये मनु ने यह स्पस्ट कहा है कि जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता लोग समण करते हैं अर्थात् प्रसन्न रहते हैं तथा जहाँ इनकी पूजा नहीं होती वहाँ सभी कार्य असफल होते हैं।[10] अतः नारी सम्मान अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्मान के अभाव में सभी प्रयत्न बेकार हैं। इसीलिए उन्नति चाहने वाले को संस्कार तथा उत्सवादि के अवसरों पर सदा वस्त्र अलंकार और आभूषणादि से इनकी पूजित करते रहना चाहिये। यह मनु का स्पष्ट उद्घोष है। याज्ञवल्क्य भी मनु के इस कथन की पुष्टि करते हैं मनु ने तो केवल पति द्वारा ही सम्मान की बात कही है परन्तु याज्ञवल्क्य तो उसके पति, भाई, दामाद, जाति के लोग सास श्वसुर, देवर और बन्धुवर्ग द्वारा भोजनादि से सम्मान करने की बात कहते हैं।

स्त्रियों को दिया गया इस प्रकार सम्मान स्मृतियों का कोरा आदर्शवाद नहीं है वरन् यह यथार्थ है। स्त्री को देव तुल्य स्वीकार करना यह प्रकट करता है कि वह कौमार्यावस्था को त्याग कर अपने को एक सफल भार्या या पत्नी बनावे। पति के द्वारा पालित एवं उसकी सहधर्मचारिणी बनते हुये एक सफल जाया बने तथा जाया बनेगी तो उसका मातृत्व तो स्वतः सिद्ध है। इन्हीं अवसरों पर वह अपना गृहिणीत्व का परिचय देती है। इसके गृहिणीत्व पद की सफलता गृहकार्य को चतुरता तथा दक्षता पूर्वक करने में व्ययशील न होने में तथा पति को देव तुल्य मानकर सदा उसके वश में रहने में है। स्त्री का देवत्व पति को देव मानकर उसकी पूजा और परिचर्या करने में ही प्रकट होता है। यही पतिव्रता धर्म है। इसी ने स्त्रियों के सम्मान को चरम सीमा पर पहुँचा दिया है तथा इस तथ्य से प्राचीन भारतीय संस्कृति के उच्चतम नैतिक बौद्धिक और आत्मिक स्तर का पूर्ण पता लगता है।

किशोरावस्था में जब मनुष्य पदार्पण करता है तो उसके मन में एक वृत्ति की इच्छा होती है तथा जब वह वृत्ति भी उसे मिल जाती है तो वह फिर एक जीवन साथी की तलाश करने लगता है। प्रकृति का यह शास्वत नियम है तथा परम आवश्यक इसके बिना सृष्टि का कोई कार्य नही चल सकता। स्त्री और पुरूष मिलकर इस जीवन रूपी रथ का संचालन करते हैं। इसीलिये मनीषियों ने इसे विवाह की संज्ञा दी है। वि उपसर्ग पूर्व वह् धातु से बना यह विवाह शब्द विशिष्ट रूप से वहन करने के कारण ही बना है। अतः इसमें स्त्री पुरूष परस्पर एक दूसरे का वहन करते हैं इसलिए ही यह संस्कार किया जाता है इसीलिये ही इसको पाणिग्रहण की संज्ञा दी जाती है। पाणिग्रहण का अर्थ हाथ पकड़ते यह

हाथ पकड़ते समय वेदध्वनि के मध्य अग्निदेव के साक्ष्य में कुछ प्रतिज्ञाये भी करते हैं। अतः हमारा यह संस्कार बहुत महत्वपूर्ण है। भारतीय संस्कृति की सर्वाधिक विशेषता इसी संस्कार के कारण है कि न तो इसके लिये कहीं लिखा पढी होती है और न ही कोई लिखित प्रमाण रखा जाता है तथापि यह सम्बन्ध अन्य संस्कृतियों की अपेक्षा चिरस्थायी होता है।

संदर्भ सूची–

[1] अल्तेकर, ए0 एस0 – प्राचीन भारतीय शासन पद्धति भारती भण्डार, इलाहाबाद, 1948

[2] आप्टे, वामन षिवराम– संस्कृत हिन्दी कोष, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली,1989.

[3] उपाध्याय, रामजी – प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, देवभारती प्रकाषन, इलाहाबाद, 1966.

[4] ओझा, डॉ0 श्रीकृष्ण– प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर, 1982.

[5] चौधरी, राधाकृष्ण– प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, जानकी प्रकाशन, नई दिल्ली 1969.

[6] जौहरी, मरोरमा– प्राचीन भारत में वर्णाश्रम व्यवस्था, भारतीय विद्या प्रकाशन वाराणसी, 1969.

[7] झा, सुभद्र– भारतीय साहित्य का इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, 1978

[8] थापर, रोमिला– भारत का इतिहास राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1989.

[9] दिनकर, रामधारी सिंह– संस्कृति के चार अध्याय, प्रकाशक–केदार नाथ सिंह उदयाचल।

[10] नटराजन, डा0 आर0–इतिहास, पाण्डीचेरी, 1994

[11] नाहर, रतिभानु सिंह– प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृति इतिहास, आगरा, 1983

[12] पंत, सुरेशचन्द्र– प्राचीन भारतीय राज्य और समाज, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, 1975

[13] पाठक, आचार्य डॉ0 वनेष्वर– धर्म मीमांसा, रॉची, 1990

[14] पुरी, डॉ0 बैजनाथ– सुदूरपूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका समाज, हिन्दी समिति ग्रंथमाला, प्रयाग, 1962

[15] राधेशरण, श्रीमती– भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास, पुष्पराज प्रकाशन, इलाहाबाद, 1984.